114

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत

वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण

(सरल भावार्थसहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

निवेदन

प्रातःस्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजका यह छोटा-सा ग्रन्थ 'वैराग्य-संदीपनी' है। इसमें कुल ६२ छन्द (दोहे-चौपाई-सोरठे) हैं। जिनमें तीन प्रकाश हैं। पहले ७ छन्दोंमें मंगलाचरण, भगवान् श्रीरामकी वन्दना, उनके स्वरूपका निरूपण और 'वैराग्य-संदीपनी' ग्रन्थकी प्रशंसा है। फिर २६ छन्दोंमें 'संत-स्वभाव-वर्णनरूप' प्रथम प्रकाश है। दूसरा प्रकाश 'संत-महिमा-वर्णन' ९ छन्दोंका और तीसरा 'शान्ति-वर्णन' २० छन्दोंका है। ग्रन्थ बहुत छोटा होनेपर भी बड़ा ही उपादेय है। मेरा सबसे सादर अनुरोध है कि वे श्रीगोस्वामीजीकी अनुभवयुक्त अमृतमयी वाणीका अध्ययन करके लाभ उठावें।

मकर-संक्रान्ति २००९ **हनुमानप्रसाद पोद्दार**

गोरखपुर

अठारहवें संस्करणका निवेदन

सं० २०५६ से इस संस्करणके साथ श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कृत 'बरवै रामायण' सरल भावार्थसहित पुस्तिका भी दी जा रही है, जो अबतक अलगसे प्रकाशित होती रही है।

आशा है, अब इन दोनों पुस्तिकाओंको एक साथ पाकर पाठकगण लाभान्वित होंगे।

—**प्रकाशक**

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत

वैराग्य-संदीपनी

मंगलाचरण और भगवत्स्वरूप-वर्णन

दोहा—**राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।**
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥ १ ॥

भगवान् श्रीरामजीकी बायीं ओर श्रीजानकीजी और दाहिनी ओर श्रीलक्ष्मणजी हैं; यह ध्यान सम्पूर्णरूपसे कल्याणमय है। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे लिये तो यह कल्पवृक्ष ही है॥ १ ॥

तुलसी मिटै न मोह तम, किएँ कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रबि-कुल-रबि राम॥ २ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सूर्यकुलके सूर्य श्रीरामजीके बिना करोड़ों गुणसमूहोंका सम्पादन करनेपर भी अज्ञानका अन्धकार नहीं मिटता और न हृदयकमल ही प्रफुल्लित होता है॥ २ ॥

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत॥ ३॥

जो बिना कानके सुनता है, बिना आँखके देखता है, बिना जीभके रस लेता है, बिना नाकके गन्ध लेता (सूँघता) है और बिना शरीर (त्वचा)-के स्पर्श करता है॥ ३॥

सो०—**अज अद्वैत अनाम, अलख रूप-गुन-रहित जो।**
माया पति सोइ राम, दास हेतु नर-तनु-धरेउ॥ ४॥

जो जन्मरहित है, अद्वितीय है, नामरहित है, अलक्ष्य है, (प्राकृत) रूप और (मायाके तीनों) गुणोंसे रहित है और मायाका स्वामी है, वही तत्त्व श्रीरामचन्द्रजी हैं, जिन्होंने (अपने) दास—भक्तोंके लिये मनुष्य-शरीर धारण किया है॥ ४॥

दोहा—**तुलसी यह तनु खेत है, मन बच कर्म किसान।**
पाप-पुन्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान॥ ५॥

तुलसीदासजी कहते हैं—यह शरीर खेत है;

मन-वचन-कर्म किसान हैं; पाप-पुण्य दो बीज हैं। जो बोया जायगा, वही अन्तमें काटा जायगा (जैसा कर्म किया जायगा, वैसा ही फल प्राप्त होगा) ॥ ५ ॥

तुलसी यह तनु तवा है, तपत सदा त्रैताप।
सांति होइ जब सांतिपद, पावै राम प्रताप॥ ६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यह शरीर तवा है, जो सदा (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तीनों तापोंसे जलता रहता है। इस जलनसे तभी शान्ति होती है, जब भगवान् श्रीरामजीके प्रतापसे शान्तिपद (परम शान्तिस्वरूप भगवान्‌के परमपद)-की प्राप्ति हो जाती है ॥ ६ ॥

तुलसी बेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र बिचार।
यह बिराग-संदीपनी, अखिल ग्यानको सार॥ ७ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—इस वैराग्य-संदीपनीमें वेद-पुराणोंका सिद्धान्त और शास्त्रोंका पूर्ण विचार है। यह समस्त ज्ञानका सारतत्त्व है ॥ ७ ॥

संत-स्वभाव-वर्णन

दोहा—**सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।**

तुलसी सरलै संतजन, ताहि परी पहिचानि॥ ८॥

इसमें सरल अक्षर हैं, इसकी सरल भाषा है, इसे सरल अर्थसे भरी हुई मानना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं, जो सरल हृदयके संतजन हैं, उनको इसकी पहचान हो गयी है अर्थात् वे इस वैराग्य-संदीपनीको सरलतासे समझते हैं॥ ८॥

चौ०—**अति सीतल अति ही सुखदाई।**

सम दम राम भजन अधिकाई॥

जड़ जीवन कौं करै सचेता।

जग महँ बिचरत है एहि हेता॥

(संतजन) अत्यन्त शीतल (शान्त-स्वभाव) और अत्यन्त सुखदायक होते हैं। वे मनपर विजय पाये हुए और इन्द्रियोंको दमन करनेवाले

तो हैं ही, श्रीराम-भजनकी उनमें विशेषता होती है। वे मूर्ख (संसारासक्त) जीवोंको सचेत करते हैं—सावधान करके भगवान्‌की ओर लगाते हैं और इसी हेतुसे जगत्‌में विचरण करते हैं॥ ९॥

दोहा—**तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि वह संत।**
परकाजे परमारथी, प्रीति लिये निबहंत॥ १०॥

तुलसीदासजी कहते हैं—ऐसे संत कहीं-कहीं (विरले ही) होते हैं। वह पृथ्वी धन्य है जहाँ ऐसे संत हैं, जो पराये कार्यमें तथा परमार्थमें अर्थात् दूसरोंकी सेवामें और परमार्थ-साधनमें निमग्न रहते हैं तथा प्रीतिके साथ (अपने) इस व्रतका निर्वाह करते हैं॥ १०॥

की मुख पट दीन्हे रहैं, जथा अर्थ भाषंत।
तुलसी या संसारमें, सो बिचारजुत संत॥ ११॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जो या तो मुखपर

पर्दा डाले रहता यानी मौन ही रहता है या केवल यथार्थ (सत्य) भाषण करता है, इस संसारमें वही विचारयुक्त (विवेकी) संत है॥ ११॥

बोलै बचन बिचारि कै, लीन्हें संत सुभाव।
तुलसी दुख दुर्बचन के, पंथ देत नहिं पाँव॥ १२॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि वह संत (साधु) स्वभावको धारण किये हुए विचारकर वचन बोलता है और दुःख तथा दुष्ट वचनके मार्गपर कभी पैर नहीं रखता अर्थात् वह न तो किसीका जी दुखाता है और न दुष्ट वचन बोलता है॥ १२॥

सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि।
तुलसी यह मत संतको, बोलै समता माहि॥ १३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि वह न तो किसीको शत्रु करके मानता है और न किसीको मित्र ही मानता है। संतका यही सिद्धान्त है कि

वह समतामें ही यानी सबको समान समझकर ही बोलता है ॥ १३ ॥

चौ०—**अति अनन्यगति इंद्री जीता।**
जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता॥
मृग तृष्ना सम जग जिय जानी।
तुलसी ताहि संत पहिचानी॥

जो सर्वथा अनन्यगति हो अर्थात् भगवान्के सिवा अन्य किसीको भी इष्ट मानकर न भजता हो, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये हुए हो, जिसका चित्त श्रीहरिको छोड़कर कहीं भी न लगता हो और जो जगत्को अपने जीमें मृगतृष्णाके* समान मिथ्या जानता हो,

* सूर्यकी किरणोंके पड़नेसे बालूमें जल प्रतीत होता है, परंतु वस्तुतः वहाँ जल नहीं होता और हरिण उसीको जल समझकर प्यास बुझानेके लिये दौड़ता है। उसीको 'मृगतृष्णा' कहते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं कि उसीको संत समझो ॥ १४ ॥

दोहा—**एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।**
रामरूप स्वाती जलद, चातक तुलसीदास ॥ १५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसको एकमात्र (भगवान्‌का ही) आश्रय है, एकमात्र (भगवान्‌का ही जिसको) बल है, एकमात्र (उन्हींसे जिसको) आशा है और (उन्हींका) भरोसा है, (जिसके लिये) भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका रूप ही स्वाती नक्षत्रका मेघ है और (जो स्वयं) चातक (की भाँति उन्हींकी ओर देख रहा है,) (वह संत है) ॥ १५ ॥

सो जन जगत जहाज है, जाके राग न दोष।
तुलसी तृष्णा त्यागि कै, गहै सील संतोष ॥ १६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके राग-द्वेष नहीं है और जो तृष्णाको त्यागकर शील

तथा संतोषको ग्रहण किये हुए है, वह संत पुरुष जगत्के (लोगोंको भवसागरसे तारनेके) लिये जहाज है॥ १६॥

सील गहनि सब की सहनि, कहनि हीय मुख राम।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम॥ १७॥

शील (विनय तथा सुशीलता)-को पकड़े रहना, सबकी कठोर बातों और व्यवहारोंको सहना; हृदयसे और मुखसे सदा राम-(के नाम तथा लीला-गुणोंको) कहते रहना—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस रहनीसे रहना ही संतजनोंका काम है॥ १७॥

निज संगी निज सम करत, दुरजन मन दुख दून।
मलयाचल है संतजन, तुलसी दोष बिहून॥ १८॥

वे अपने संगियोंको (जो उनका सत्संग करते हैं, उनको) अपने ही समान बना लेते हैं; किंतु दुर्जनोंके मनका दुःख दूना करते हैं (द्वेषकी अग्निसे जलते हुए दुर्जनलोग संतोंके साथ विशेष

द्वेष करके अपने दुःखको बढ़ा लेते हैं)। (परंतु) तुलसीदासजी कहते हैं कि संत तो (वस्तुतः सदा) चन्दनके समान शीतल और दोषरहित ही हैं॥ १८॥

कोमल बानी संत की, स्त्रवत अमृतमय आइ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ॥ १९॥

संतकी वाणी कोमल होती है, उससे अमृतमय (रस) झरा करता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि उसे सुनते ही कठोर मन भी (पिघलाये हुए) मोमके समान (कोमल) हो जाता है॥ १९॥

अनुभव सुख उतपति करत, भय-भ्रम धरै उठाइ।
ऐसी बानी संत की, जो उर भेदै आइ॥ २०॥

संतकी वाणी ऐसी होती है कि जो अनुभव-सुख-(आत्मानुभूतिके आनन्द) को उत्पन्न करती है, भय और भ्रमको उठाकर अलग रख देती है और आकर हृदयको भेद डालती (हृदयकी अज्ञानग्रन्थिको तोड़ डालती) है॥ २०॥

सीतल बानी संत की, ससिहू ते अनुमान।
तुलसी कोटि तपन हरै, जो कोउ धारै कान॥ २१ ॥

संतकी शीतल वाणी चन्द्रमासे भी बढ़कर अनुमान की जाती है, तुलसीदासजी कहते हैं कि जो कोई उसको कानोंमें धारण करता है, उसके करोड़ों तापोंको हर लेती है॥ २१ ॥

चौ०—**पाप ताप सब सूल नसावै।**
मोह अंध रबि बचन बहावै॥
तुलसी ऐसे सदगुन साधू।
बेद मध्य गुन बिदित अगाधू॥

संतजन पाप, ताप और सब प्रकारके शूलोंको नष्ट कर देते हैं। उनके सूर्य-सदृश वचन मोहरूपी अन्धकारका नाश कर डालते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि साधु ऐसे सद्गुणी होते हैं। उनके अगाध गुण वेदोंमें विख्यात हैं॥ २२ ॥

दोहा—**तन करि मन करि बचन करि, काहू दूखत नाहिं ।**
तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माहिं ॥ २३ ॥

जो शरीरसे, मनसे और वचनसे किसीपर दोषारोपण नहीं करते, तुलसीदासजी कहते हैं कि जगत्में ऐसे संतजन श्रीरामचन्द्रजीके रूप ही हैं ॥ २३ ॥

मुख दीखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं ।
बचन सुनत मन मोहगत, पूरुब भाग मिलाहिं ॥ २४ ॥

जिनका मुख दीखते ही पाप नष्ट हो जाते हैं, स्पर्श होते ही कर्म विलीन हो जाते हैं और वचन सुनते ही मनका मोह (अज्ञान) चला जाता है, ऐसे संत पूर्व (जन्मकृत कर्मोंके कारण) सद्भाग्यसे ही मिलते हैं ॥ २४ ॥

अति कोमल अरु बिमल रुचि, मानस में मल नाहिं ।
तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं ॥ २५ ॥

(संतजन) अत्यन्त कोमल और निर्मल रुचिवाले

होते हैं। उनके मनमें पाप नहीं होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे अपने स्वामीमें नित्य लगे हुए मनवाले होते हैं॥ २५॥

जाके मन ते उठि गई, तिल-तिल तृष्ना चाहि।
मनसा बाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि॥ २६॥

जिसके मनसे तृष्णा और चाह तिल-तिल उठ गयी है (जरा भी नहीं रही है), तुलसीदास मनसे, वचनसे और कर्मसे उसकी वन्दना करता है॥ २६॥

कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काष्ठ पषान।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥ २७॥

जो सोने और काँचको समान समझते हैं और स्त्रीको काठ-पत्थर-(के समान देखते हैं), तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे संतजन पृथ्वीमें (शुद्ध सच्चिदानन्द) ब्रह्मके समान हैं॥ २७॥

चौ०—**कंचन को मृतिका करि मानत।**
कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत॥
तुलसी भूलि गयो रस एहा।
ते जन प्रगट राम की देहा॥

जो सोनेको मिट्टीके समान मानते हैं और स्त्रीको काठ-पत्थरके रूपमें देखते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि जो इस (विषय) रसको भूल गये हैं, वे (संत) जन श्रीरामचन्द्रजीके मूर्तिमान् शरीर ही हैं॥ २८॥

दोहा—**आकिंचन इंद्रीदमन, रमन राम इक तार।**
तुलसी ऐसे संत जन, बिरले या संसार॥ २९॥

जो अकिंचन हैं (जिनके पास ममताकी कोई भी वस्तु नहीं है), जो इन्द्रियोंका दमन किये हुए हैं और जो एकतार (निरन्तर) राममें ही रमण करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं ऐसे संतजन इस संसारमें बिरले ही हैं॥ २९॥

अहंबाद 'मैं' 'तैं' नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ।
दुख ते दुख नहिं ऊपजै, सुख तैं सुख नहिं होइ॥ ३०॥
सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ।
तुलसी या संसारमें, कहत संत जन सोइ॥ ३१॥

जिसमें न तो अहंकार है, न मैं-तू (या मेरा-तेरा) है, जिसके कोई भी दुष्ट संग नहीं है, जिसको दुःख-(दुःखजनक घटना) से दुःख नहीं होता तथा सुखसे हर्ष नहीं होता, जो सोने और काँचको समान समझता है, जिसको शत्रु-मित्र दोनों समान हैं—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस संसारमें उसीको संतजन कहते हैं॥ ३०-३१॥

बिरले बिरले पाइए, माया त्यागी संत।
तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी केक अनंत॥ ३२॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुगमें मायाका त्याग कर देनेवाले संत कोई-कोई ही मिलते हैं, पर (ऊपरसे मीठा बोलनेवाले और मौका लगते

ही साँपोंको खा जानेवाले) मोर-मोरिनी-जैसे कामी-कुटिल लोगोंका अन्त (पार) नहीं है॥ ३२॥

मैं तैं मेट्यो मोह तम, उग्यो आतमा भानु।
संत राज सो जानिये, तुलसी या सहिदानु॥ ३३॥

जिसके आत्मारूपी सूर्यका उदय हो गया और मैं-तू-रूप अज्ञानान्धकारका नाश हो गया, तुलसीदासजी कहते हैं कि उसको संतराज (संतशिरोमणि) जानना चाहिये; क्योंकि यही उसकी पहचान है॥ ३३॥

संत-महिमा-वर्णन

सो०—**को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की।**
जिन्ह के बिमल बिबेक, सेस महेस न कहि सकत॥ ३४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि एक मुखसे संतकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है। जिनके मलरहित (मायारहित विशुद्ध) विवेक है,

वे (सहस्त्रमुखवाले) शेषजी और (पंचमुख) महेश्वर (शिवजी) भी उसका कथन नहीं कर सकते॥ ३४॥

दोहा—**महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ।**
तुलसी गनपत सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ॥ ३५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि (संतकी महिमा इतनी अपार है कि) पृथ्वीको कागज, समुद्रको दावात और कल्पवृक्षको कलम बनाकर भी, गणेशजीसे भी उसकी महिमा नहीं लिखी जा सकती॥ ३५॥

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्र बर सोइ।
तुलसी जो रामहि भजे, जैसेहुँ कैसेहुँ होइ॥ ३६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि उसके माता-पिता धन्य-धन्य हैं और वही श्रेष्ठ पुत्र धन्य है, जो जैसे-कैसे भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका भजन करता है॥ ३६॥

तुलसी जाके बदन ते, धोखेहुँ निकसत राम।
ताके पग की पगतरी, मेरे तन को चाम॥ ३७॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके मुखसे धोखेसे भी 'राम' (नाम) निकल जाता है, उसके पगकी जूती मेरे शरीरके चमड़ेसे बने॥ ३७॥

तुलसी भगत सुपच भलौ, भजै रैन दिन राम।
ऊँचो कुल केहि कामको, जहाँ न हरिको नाम॥ ३८॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि भक्त चाण्डाल भी अच्छा है, जो रात-दिन भगवान् रामचन्द्रजीका भजन करता है; जहाँ श्रीहरिका नाम न हो, वह ऊँचा कुल किस कामका॥ ३८॥

अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥ ३९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि बहुत ऊँचे पहाड़ोंपर (विषधर) सर्पोंके रहनेके स्थान होते हैं और बहुत नीची जगहमें अत्यन्त सुखदायक

ऊख, अन्न और जल होता है। (ऐसे ही भजनरहित ऊँचे कुलमें अहंकार, मद, काम, क्रोधादि रहते हैं और भजनयुक्त नीच कुलमें अति सुखदायिनी भक्ति, शान्ति, सुख आदि होते हैं; इससे वही श्रेष्ठ है) ॥ ३९ ॥

चौ०—**अति अनन्य जो हरि को दासा।**
रटै नाम निसिदिन प्रति स्वासा॥
तुलसी तेहि समान नहिं कोई।
हम नीकें देखा सब कोई॥

जो श्रीहरिका अनन्य सेवक है और रात-दिन प्रत्येक श्वासमें उनका नाम रटता है, तुलसीदासजी कहते हैं कि उसके समान कोई नहीं है, मैंने सबको अच्छी तरहसे देख लिया है ॥ ४० ॥

चौ०—**जदपि साधु सबही बिधि हीना।**
तद्यपि समता के न कुलीना॥

यह दिन रैन नाम उच्चरै।
वह नित मान अगिनि महँ जरै॥

साधु यदि सभी प्रकारसे हीन भी हो तो भी कुलीन-(ऊँचे कुलवाले) की उसके साथ समता नहीं हो सकती; क्योंकि यह (साधु) दिन-रात भगवान्‌के नामका उच्चारण करता है और वह (कुलीन) नित्य अभिमानकी अग्निमें जला करता है॥ ४१॥

दोहा—**दास रता एक नाम सों, उभय लोक सुख त्यागि।**
तुलसी न्यारो ह्वै रहै, दहै न दुख की आगि॥ ४२॥

भगवान्‌का सेवक दोनों (पृथ्वी और स्वर्ग) लोकोंका सुख त्यागकर एकमात्र भगवान्‌के नाममें ही प्रेम करता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वह संसारसे अलग होकर (संसारकी आसक्तिको छोड़कर) रहता है, इसलिये दुःखकी अग्निमें नहीं जलता॥ ४२॥

शान्ति-वर्णन

दोहा—**रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।**
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ग्यानु॥ ४३॥
ग्यान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांतिपद, तुलसी अमल अदाग॥ ४४॥

रात्रिका भूषण (शोभा) चन्द्रमा है, दिनका भूषण सूर्य है, सेवक-(भक्त) का भूषण भक्ति है, भक्तिका भूषण ज्ञान है, ज्ञानका भूषण ध्यान है, ध्यानका भूषण त्याग है। तुलसीदासजी कहते हैं कि त्यागका भूषण शान्तिपद (भगवान्‌का शान्तिमय परमपद) है, जो (सर्वथा) निर्मल और निष्कलंक है॥ ४३-४४॥

चौ०—**अमल अदाग शांतिपद सारा।**
सकल कलेस न करत प्रहारा॥
तुलसी उर धारै जो कोई।
रहै अनंद सिंधु महँ सोई॥

बिबिध पाप संभव जो तापा।
मिटहिं दोष दुख दुसह कलापा॥
परम सांति सुख रहै समाई।
तहँ उतपात न भेदै आई॥
तुलसी ऐसे सीतल संता।
सदा रहै एहि भाँति एकंता॥
कहा करै खल लोग भुजंगा।
कीन्ह्यौ गरल-सील जो अंगा॥

यह निर्मल और निष्कलंक शान्तिपद ही सार (तत्त्व) है। (इसकी प्राप्ति होनेपर) कोई भी क्लेश प्रहार (आक्रमण) नहीं करते (अर्थात् इस स्थितिमें समस्त अविद्याजनित क्लेशोंका नाश हो जाता है)। तुलसीदासजी कहते हैं जो कोई इसे हृदयमें धारण कर लेता है, वह आनन्दसागरमें निमग्न रहता है। विविध पापोंसे उत्पन्न जो ताप (कष्ट) हैं तथा जो दोष एवं असह्य दुःखसमूह

हैं, वे मिट जाते हैं और वह उस परमशान्तिरूप सुखमें समा जाता है कि जहाँ कोई भी उत्पात आकर प्रवेश नहीं कर सकता। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे शीतल (शान्त) संत सदा इसी प्रकार एकान्तमें (केवल एक शान्तिपदरूप परमात्माके परमपदमें) ही निवास करते हैं। जिन्होंने अपने अंगोंको विषस्वभाव बना लिया है, ऐसे सर्परूप दुष्टलोग उन-(संतों) का क्या (बिगाड़) कर सकते हैं॥ ४५—४७॥

दोहा—**अति सीतल अतिही अमल, सकल कामना हीन।**
तुलसी ताहि अतीत गनि, बृत्ति सांति लयलीन॥ ४८॥

जो अत्यन्त शीतल, अत्यन्त ही निर्मल (पवित्र) तथा समस्त कामनाओंसे रहित होता है और जिसकी वृत्ति शान्तिमें लवलीन रहती है, तुलसीदासजी कहते हैं कि उसीको अतीत (गुणातीत) समझना चाहिये॥ ४८॥

चौ०—**जो कोइ कोप भरे मुख बैना।**
सन्मुख हतै गिरा-सर पैना॥
तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं।
सो सीतल कहिए जग माहीं॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कोई क्रोधमें भरकर मुखसे (कठोर वाणी) बोले और सामने ही वचनरूपी तीखे बाणोंकी वर्षा करे तो भी जिसको लेशमात्र भी रोष न हो उसीको जगत्में शीतल (संत) कहते हैं॥ ४९॥

दोहा—**सात दीप नव खंड लौ, तीनि लोक जग माहिं।**
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥ ५०॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सातों द्वीप, नवों खण्ड (नहीं-नहीं) तीनों लोक और जगत्भरमें शान्तिके समान दूसरा कोई सुख नहीं है॥ ५०॥

चौ०—**जहाँ सांति सतगुरु की दई।**
तहाँ क्रोध की जर जरि गई॥

सकल काम बासना बिलानी।
तुलसी बहै सांति सहिदानी॥
तुलसी सुखद सांति को सागर।
संतन गायो करन उजागर॥
तामें तन मन रहै समोई।
अहं अगिनि नहिं दाहैं कोई॥

जहाँ सद्‌गुरुकी दी हुई शान्ति प्राप्त हुई कि वहीं क्रोधकी जड़ जल गयी और समस्त कामना और वासनाएँ बिला गयीं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यही शान्तिकी पहचान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसे संतोंने सुखदायक, शान्तिका समुद्र और (ज्ञानका) प्रकाश करनेवाला बतलाया है, उसमें यदि कोई तन-मनसे समा जाय—लीन हो रहे तो उसे अहंकारकी अग्नि किसी प्रकार नहीं जला सकती॥ ५१-५२॥

दोहा—**अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।**
तुलसी बाँचै संतजन, केवल सांति अधार॥ ५३॥

अहंकारकी अग्निमें समस्त संसार जल रहा है। तुलसीदासजी कहते हैं कि केवल संतजन ही शान्तिका आधार लेनेके कारण (उससे) बचते हैं॥ ५३॥

महा सांति जल परसि कै, सांत भए जन जोइ।
अहं अगिनि ते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ॥ ५४॥

जो (संत) जन महान् शान्तिरूप जलको स्पर्श करके शान्त हो गये हैं, वे अहंकारकी अग्निसे नहीं जलते, चाहे कोई करोड़ों उपाय करे॥ ५४॥

तेज होत तन तरनि को, अचरज मानत लोइ।
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ॥ ५५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि (उस अहंकाररहित संतके) शरीरका तेज सूर्यका-सा हो जाता है, लोग (उसे देख-देखकर) आश्चर्य मानते हैं; परंतु (शान्तिके द्वारा) जो जल (के समान शीतल) हो

गया है, वह फिर अग्नि (के समान) नहीं हो सकता (उसमें अहंकारका उदय नहीं होता) ॥ ५५ ॥

जद्यपि सीतल सम सुखद, जगमें जीवन प्रान।
तदपि सांति जल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान ॥ ५६ ॥

यद्यपि वह शान्तिपद शीतल है, सम है तथा सुखदायक है और जगत्‌में (संतोंका) जीवन-प्राण है तथापि उसे (साधारण) जल (के समान) मत समझो, (जलके समान शीतल होनेपर भी) उसका तेज अग्निके समान है ॥ ५६ ॥

चौ०—**जरै बरै अरु खीझि खिझावै।**
राग द्वेष महँ जनम गँवावै॥
सपनेहुँ सांति नहीं उन देही।
तुलसी जहाँ-जहाँ ब्रत एही॥

जो सदा (अहंकार तथा कामनाकी अग्निमें) जलते-बरते रहते हैं, स्वयं क्रोध करके दूसरोंको क्रोधित करते हैं और राग-द्वेषमें

ही अपना जन्म (जीवन) खो देते हैं—तुलसीदासजी कहते हैं कि जहाँ-जहाँ ऐसा व्रत है (अर्थात् जिन-जिनका ऐसा स्वभाव है) उनके शरीरमें (जीवनमें) स्वप्नमें भी शान्ति नहीं होती॥ ५७॥

दोहा—**सोइ पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।**
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥ ५८॥
सोइ ग्यानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि॥ ५९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके चित्तसे राग-द्वेषका नाश हो गया है, वही पण्डित है, वही (सत्-असत्का) पारखी है; वही चतुर संत है, वही शूरवीर है, वही सावधान है; वही प्रामाणिक योद्धा है, वही ज्ञानी है, वही गुणवान् पुरुष है, वही दाता है और वही ध्यान-सम्पन्न है॥ ५८-५९॥

चौ०—**राग द्वेष की अगिनि बुझानी।**
काम क्रोध बासना नसानी॥

तुलसी जबहि सांति गृह आई।
तब उरहीं उर फिरी दोहाई॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जब राग-द्वेषकी अग्नि बुझ गयी, काम, क्रोध और वासनाका नाश हो गया और घरमें (अन्तःकरणमें) शान्ति आ गयी, तभी हृदयमें भीतर-ही-भीतर (तुरंत रामकी) दोहाई फिर गयी। (फिर अन्तःकरणमें अज्ञान तथा तज्जनित काम-क्रोधादिका साम्राज्य नहीं रहा, वहाँ रामराज्य हो गया, सर्वतोभावसे भगवान् ही छा गये।) ॥ ६० ॥

दोहा—**फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि।**
तुलसी ज्यों रबि कें उदय, तुरत जात तम लाजि॥ ६१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि जब रामकी दोहाई फिर गयी (हृदयमें भगवान्‌का प्रकाश तथा विस्तार हो गया), तब कामादि (दोष उसी क्षण वैसे ही) भाग गये, जैसे सूर्यके उदय होते ही उसी क्षण अन्धकार लजा (कर भाग) जाता है॥ ६१ ॥

यह बिराग संदीपनी, सुजन सुचित सुनि लेहु।
अनुचित बचन बिचारि के, जस सुधारि तस देहु॥ ६२॥

सज्जनो! इस वैराग्य-संदीपनीको सावधान एवं स्थिरचित्तसे सुनो और विचारकर अनुचित वचनोंको जहाँ जैसा उचित हो सुधार दो॥ ६२॥

॥ श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकृत 'वैराग्य-संदीपनी' समाप्त॥

बरवै रामायण

बालकाण्ड

बड़े नयन कुटि भृकुटी भाल बिसाल।
तुलसी मोहत मनहि मनोहर बाल॥ १॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि (बालक श्रीरामके) नेत्र बड़े-बड़े हैं, भौंहें टेढ़ी हैं, ललाट विशाल (चौड़ा) है, यह मनोहर बालक मनको मोह लेता है॥ १॥

कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुंडल लोल।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल॥ २॥

(अयोध्याके राजभवनकी स्त्रियाँ कहती हैं—) सखी! श्रीरामके ललाटपर केसरका तिलक है, कानोंमें चंचल कुण्डल हैं और जुल्फोंसे मिलकर गोल-गोल गाल कैसे सुशोभित हो रहे हैं॥ २॥

भाल तिलक सर सोहत भौंह कमान।
मुख अनुहरिया केवल चंद समान॥ ३॥

मस्तकपर तिलककी रेखा बाणके समान शोभा दे रही है और भौंहें धनुषके समान हैं। मुखकी तुलनामें तो अकेला (पूर्णिमाका) चन्द्रमा ही आ सकता है॥ ३॥

तुलसी बंक बिलोकनि मृदु मुसकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि॥ ४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि (श्रीरामकी) चितवन तिरछी है, मन्द-मन्द मुसकान उनके ओठोंपर खेल रही है। प्रभुके नेत्रोंको कमलके समान कहकर कैसे वर्णन करूँ, (क्योंकि ये नेत्र तो नित्य प्रफुल्लित रहते हैं और कमल रात्रिमें कुम्हला जाता है।)॥ ४॥

चढ़त दसा यह उतरत जात निदान।
कहौं न कबहूँ करकस भौंह कमान॥ ५॥

(श्रीरामकी) भौंहोंको मैं कभी भी कठोर धनुषके समान नहीं कहूँगा; क्योंकि उस धनुषकी दशा यह है कि वह एक बार (शत्रुके साथ मुठभेड़ होनेपर) तो तन जाता है और अन्तमें (काम होनेपर—प्रत्यंचासे हाथ हटा लिये जानेपर क्रमशः) उतरता जाता (ढीला कर दिया जाता) है (इधर प्रभुकी भौंहें कोमल हैं तथा सदा बाँकी रहती हैं) ॥ ५ ॥

काम रूप सम तुलसी राम सरूप।
को कबि समसरि करै परै भवकूप॥ ६ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसा कौन कवि है, जो श्रीरामके स्वरूपकी तुलना कामदेवके रूपसे करके (इस अपराधसे) संसाररूपी कुएँ (आवागमनके चक्र)-में पड़ेगा॥ ६ ॥

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।
राम नीति रत काम कहा यह पाव॥ ७॥

श्रीराम साधु (परम सज्जन), उत्तम शीलसम्पन्न, उत्तम बुद्धिवाले, पवित्र, सरल स्वभावके तथा न्यायपरायण हैं, भला कामदेव यह (सब) कहाँ पा सकता है॥ ७॥

सींक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन।
मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन॥ ८॥

संकोचके साथ प्रभुने (धनुष चलाना) सीखनेके लिये (हाथमें) एक तिनकेका धनुष लिया। (यह देख) प्रसन्न होकर महाराज दशरथने एक धनुही (नन्हा धनुष) मँगाकर हँसकर उन्हें दिया॥ ८॥

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥ ९॥

(श्रीरामरूपका वर्णन करनेके अनन्तर अब श्रीजानकीजीके रूपका वर्णन करते हैं। जनकपुर-की स्त्रियाँ परस्पर कह रही हैं—) सखी! (श्रीजनककुमारीके) केशोंमें गूँथे जानेपर (उनका

नीले रंगकी झाईं पड़नेसे) मोती मरकतमणि (पन्ने)-के बने हुए (हरे) प्रतीत होते हैं, किन्तु फिर हाथमें लिये जानेपर वे श्वेत आभा बिखेरने लगते हैं ॥ ९ ॥

सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सिय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥ १० ॥

सखी! स्वर्ण शोभा (कान्ति)-में तो श्रीजानकीके श्रीअंगोंके समान है, किन्तु उनकी तुलनामें थोड़ा भी सुखदायी (शीतल) नहीं है और श्रीजानकीके अंग कोमल हैं, पर स्वर्ण कठोर है॥ १० ॥

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाइ॥ ११ ॥

श्रीसीताजीका मुख शरद्-ऋतुके कमलके समान कैसे कहा जाय, क्योंकि वह (कमल) तो रात्रिमें म्लान होता है, किंतु यह (श्रीमुख) रात-दिन (समानरूपसे) प्रफुल्लित रहता है॥ ११ ॥

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हिवरें जब कुँभिलाइ॥ १२॥

चम्पाके पुष्पकी माला श्रीजानकीजीके अंगसे सटकर बहुत शोभा देती है, किंतु (वह उनके शरीरकी कान्तिमें ऐसी मिल जाती है कि) उनके हृदयपर माला है, यह पता तब लगता है, जब वह कुम्हला जाती (कुछ सूख जाती) है॥ १२॥

सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेल पहिरावौं चंपक होत॥ १३॥

(सखी श्रीजानकीजीसे ही कहती है—) जानकी! तुम्हारे शरीरके रंगसे मिलकर पुष्पहार अधिक प्रकाशित होता है और तो और (तुम्हारे अंगकी स्वर्णकान्तिके कारण) बेला (मोगरा)-के पुष्पोंकी माला मैं (तुम्हें) पहनाती हूँ तो वह भी चम्पाके पुष्पकी माला जान पड़ती है॥ १३॥

नित्य नेम कृत अरुन उदय जब कीन।
निरखि निसाकर नृप मुख भए मलीन॥ १४॥

(अब श्रीजानकी-स्वयंवरका वर्णन करते हैं। जनकपुरमें स्वयंवरके दिन प्रातःकाल श्रीराम-लक्ष्मणने) जब अरुणोदय हुआ तब नित्य-नियम (संध्यादि) किया। उन्हें देखकर चन्द्रमाके समान (दूसरे आगत) राजाओंके मुख कान्तिहीन हो गये॥ १४॥

कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अँदेस।
तमकि ताहि ए तोरिहिं कहब महेस॥ १५॥

(स्वयंवरसभामें जनकपुरकी नारियाँ श्रीरामको देखकर परस्पर कह रही हैं—) सखी! यही संदेहकी बात है कि धनुष कछुएकी पीठके समान कठोर है। (तब दूसरी सखी कहती है—) उसे ये बड़े तपाकके साथ तोड़ देंगे, स्वयं शंकरजी (अपने धनुषके टूट जानेको) कह देंगे॥ १५॥

नृप निरास भए निरखत नगर उदास।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास॥ १६॥

समस्त नरेश (धनुष तोड़नेमें असफल होकर) निराश हो गये। (इससे) पूरा नगर (समस्त जनकपुरवासियोंका समुदाय) उदास दिखायी देने लगा। तब श्रीरामने धनुषको तोड़कर सबका दुःख (चिन्ता) दूर कर दिया॥ १६॥

का घूँघट मुख मूदहु नवला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥ १७॥

(विवाहके अनन्तर राजभवनमें सखियाँ श्रीजानकीजी और श्रीरामके मिलनके समय श्रीजानकीजीसे कहती हैं—) 'हे नवीना (मुग्धा) नारी! घूँघटसे मुख क्यों छिपा रही हो, इसीके-जैसा चन्द्रमा आकाशमें शोभित है (उसे तो सब देखते ही हैं)॥ १७॥

गरब करहु रघुनंदन जनि मन माहँ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाहँ॥ १८॥

(फिर सखियाँ श्रीरामसे विनोद करती कहती हैं—) रघुनन्दन! तुम अपने मनमें (अपने सौन्दर्यका) गर्व मत करो। तुम्हारी मूर्ति (साँवली होनेके कारण) श्रीजानकीजीकी छायाके समान है, यह देख लो॥ १८॥

उठीं सखीं हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भए उनीदे नैन॥ १९॥

(विनोदके अनन्तर) सखियाँ हँसकर यह कोमल वाणी कहती हुई जानेका बहाना बनाकर उठीं कि श्रीजानकी और रघुनाथजीके नेत्र अब नींदसे भर गये हैं। (इन्हें अब सोने देना चाहिये।)॥ १९॥

अयोध्याकाण्ड

सात दिवस भए साजत सकल बनाउ।
का पूछहु सुठि राउर सरल सुभाउ॥ २०॥

(मन्थरा महारानी कैकेयीजीसे कहती है कि श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये) सब प्रकारकी तैयारियाँ करते—साज सजाते (महाराजको) सात दिन हो गये हैं! (आप अब) क्या पूछती हैं, आपका स्वभाव बहुत ही सीधा है॥ २०॥

राजभवन सुख बिलसत सिय सँग राम।
बिपिन चले तजि राज सो बिधि बड़ बाम॥ २१॥

श्रीराम राजभवनमें श्रीजानकीके साथ (नाना प्रकारसे) सुख भोग रहे थे; किंतु वही राज्य छोड़कर वनके लिये चल पड़े। विधाताकी बड़ी ही विपरीत चाल है॥ २१॥

कोउ कह नर नारायन हरि हर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ॥ २२॥

(मार्गमें श्रीराम-लक्ष्मणको देखनेपर) कोई कहता है कि 'ये नर और नारायण ऋषि हैं', कोई कहता है कि 'ये विष्णु और

शिव हैं' और कोई कहता है कि 'वनमें वसन्त और कामदेव दोनों विहार कर रहे हैं'॥ २२॥

तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान।
राम लखन के रूप न देखेउ आन॥ २३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि (मार्गवासियोंकी) बुद्धि अनुमान करते-करते थक गयी। श्रीराम-लक्ष्मणके समान दूसरा कोई (देवतादिका) रूप नहीं दिखायी पड़ा॥ २३॥

तुलसी जनि पग धरहु गंग मह साँच।
निगानाँग करि नितहि नचाइहि नाच॥ २४॥

तुलसीदासजी (केवटके शब्दोंको दुहराते प्रभुसे) कहते हैं—गंगामें (खड़े होकर मैं) सच कह रहा हूँ कि (आप मेरी नौकापर) चरण मत रखें, (नहीं तो नौका स्त्रीके रूपमें बदल जायगी और मेरी स्त्री मुझे एक और स्त्रीके साथ देखकर) नित्य ही सर्वथा नंगा करके नाच नचाया करेगी॥ २४॥

सजल कठौता कर गहि कहत निषाद।
चढ़हु नाव पग धोइ करहु जनि बाद॥ २५॥

निषाद हाथमें जल भरा कठौता लेकर (प्रभुसे) कहता है—'चरण धोकर नौकापर चढ़िये, तर्क-वितर्क मत कीजिये'॥ २५॥

कमल कंटकित सजनी कोमल पाइ।
निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ॥ २६॥

(ग्राम-नारियाँ श्रीराम-लक्ष्मण तथा जानकीजी-को मार्गमें जाते देखकर कहती हैं—) सखी! कमल तो काँटोंसे युक्त होता है; इनके चरण तो (उससे भी) कोमल हैं। (इतना ही नहीं,) वह रात्रिमें म्लान (बंद) हो जाता है, ये नित्य प्रफुल्लित दीखते हैं॥ २६॥

वाल्मीकिवचन

द्वै भुज करि हरि रघुबर सुंदर बेष।
एक जीभ कर लछिमन दूसर सेष॥ २७॥

महर्षि वाल्मीकीजीने कहा—'सुन्दर वेषधारी श्रीरघुनाथजी द्विभुज विष्णु हैं और लक्ष्मणजी एक जिह्वावाले दूसरे शेषनाग हैं'॥ २७॥

अरण्यकाण्ड

बेद नाम कहि अँगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखाहि लखन के पास॥ २८॥

(चार) अँगुलियोंसे (चार) वेदोंका नाम कहकर (श्रुतिवाचक कानोंका संकेत करके) और आकाशमें काटनेका संकेत करके (उन्हें काट दो, यह सूचित करके प्रभुने) शूर्पणखाको लक्ष्मणजीके पास भेज दिया॥ २८॥

हेमलता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ।
हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि दिखाइ॥ २९॥

स्वर्णलताकी मूर्तिके समान सीताजीने कोमलतापूर्वक (किंचित्) मुसकराकर प्रभुको सोनेका मृग दिखला दिया॥ २९॥

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच॥ ३०॥

जटाओंका मुकुट बनाये, हाथमें धनुष-बाण लिये मारीचके साथ दौड़ते एवं (पीछेसे जानकीकी ओर) तिरछी दृष्टिसे देखते हुए प्रभुकी यह चितवनि (गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीजानकीजीके) नेत्रोंके मध्य निवास करती है (वे सदा उसी चितवनका चिन्तन करती रहती हैं।)॥ ३०॥

रामवाक्य

कनक सलाक कला ससि दीप सिखाउ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहि बताउ॥ ३१॥

(जानकी-हरणके पश्चात्) श्रीराम कहते हैं—'लक्ष्मण! सोनेकी शलाका, चन्द्रमाकी कला, दीपककी शिखा अथवा नक्षत्रके समान (ज्योतिर्मयी) सीता कहाँ है? मुझे यह बता दो'॥ ३१॥

सीय बरन सम केतकि अति हियँ हारि।
कहेसि भँवर कर हरवा हृदय बिदारि॥ ३२॥

'श्रीसीताके वर्ण (रूप)-के साथ समता करते हुए चित्तमें अत्यन्त निराश होकर केतकी-पुष्पने अपना हृदय फाड़ दिया और (कलंकके रूपमें) भौंरोंकी (काली) माला बना (पहन) ली'॥ ३२॥

सीतलता ससि की रहि सब जग छाइ।
अगिनि ताप है हम कहँ सँचरत आइ॥ ३३॥

'चन्द्रमाकी शीतलता समस्त संसारमें व्याप्त हो रही है; किंतु वही (श्रीजानकीजीके वियोगमें तपे हुए) हमारे शरीरमें लगकर अग्निका-सा ताप धारण कर लेती है'॥ ३३॥

किष्किन्धाकाण्ड

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इन तें भइ सित कीरति अति अभिराम॥ ३४॥

(श्रीहनुमान्‌जी सुग्रीवसे परिचय कराते हुए कहते हैं—) 'ये साँवले तथा गोरे शरीरवाले दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण हैं। कीर्ति (की अधिष्ठात्री देवी) भी इनके द्वारा उज्ज्वल तथा अत्यन्त मनोहर हुई है (इनकी कीर्ति तो कीर्तिको भी उज्ज्वल करनेवाली है।)'॥ ३४॥

कुजन पाल गुन बर्जित अकुल अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुन गाथ॥ ३५॥

(सुग्रीव श्रीरघुनाथजीसे कहते हैं—) 'कृपानिधान! आपके गुणोंका कैसे वर्णन करूँ— आप (मेरे-जैसे) दुर्जन, गुणरहित, कुलहीन तथा अनाथका पालन करनेवाले हैं'॥ ३५॥

सुन्दरकाण्ड

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ॥ ३६॥

(श्रीजानकीजी कहती हैं—) हृदयमें जब वियोगकी अग्नि भड़क उठती है, तब मेरी शत्रु ये दोनों आँखें (आँसू बहाकर) उसे बुझा देती हैं; (उस अग्निमें मुझे जल नहीं जाने देतीं।) ॥ ३६ ॥

डहकनि है उजिअरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम॥ ३७॥

'यह फैली हुई रात्रिकी चाँदनी नहीं है (दुःखदायिनी) धूप है। मुझे श्रीरामके बिना (समस्त) जगत् जलता-सा लगता है'॥ ३७॥

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ॥ ३८॥

हनुमान्! अब जीवित रहनेकी कोई आशा नहीं है। (तुम देखते ही हो कि) कनिष्ठिका अँगुलीकी अँगूठी अब कंगन बन गयी (उसे हाथमें कंगनके समान पहन सकती हूँ, इतना दुर्बल शरीर हो गया है।) ॥ ३८ ॥

राम सुजस कर चहु जुग होत प्रचार।
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार॥ ३९॥

'श्रीरामके सुयशका प्रचार चारों युगोंमें होता है, किंतु असुरोंको देखकर लगता है कि संसारमें अँधेरा (अन्याय ही व्याप्त) है (अर्थात् इस समय श्रीरामका यश राक्षसोंके अत्याचारमें छिप गया है।)'॥ ३९॥

सिय बियोग दुख केहि बिधि कहउँ बखानि।
फूल बान ते मनसिज बेधत आनि॥ ४०॥

(हनुमान्‌जी श्रीरामजीसे कहते हैं—) 'श्रीजानकीजीके दुःखका वर्णन किस प्रकार करूँ। कामदेव आकर उन्हें (अपने) पुष्पबाणसे बींधता रहता है'॥ ४०॥

सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।
बिधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि॥ ४१॥

'जब शरद्-ऋतुके चन्द्रमाकी चाँदनी प्रकट होकर चारों दिशाओंमें (सब ओर) फैल जाती है,

तब (वह श्रीजानकीजीको सूर्यकी धूपके समान ऐसी उष्ण लगती है कि) चन्द्रमाको अपने कुल-(सूर्यवंश) का प्रवर्तक (सूर्य) समझकर हाथ जोड़कर (उससे) प्रार्थना करती है'॥ ४१ ॥

लंकाकाण्ड

बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनंत।
जलधि सरिस को कहै राम भगवंत॥ ४२ ॥

श्रीलक्ष्मणजीके साथ (वानर-भालुओंकी) नाना प्रकारकी सेना शोभा पा रही है। (वह इतनी विशाल है कि दूसरे समुद्रके समान प्रतीत होती है।) किंतु (जिसमें लक्ष्मणके रूपमें साक्षात् भगवान् अनन्त विराजमान थे और जो स्वयं भगवान् श्रीरामकी सेना थी) उसे (प्राकृत) समुद्रके समान कौन कहे। (समुद्र तो ससीम है, असीम भगवान्‌की सेना भी असीम ही होनी चाहिये।) ॥ ४२ ॥

उत्तरकाण्ड

चित्रकूट पय तीर सो सुरतरु बास।
लखन राम सिय सुमिरहु तुलसीदास॥ ४३॥

चित्रकूटमें पयस्विनी नदीके किनारे (किसी वृक्षके नीचे) रहना कल्पवृक्षके नीचे (स्वर्गमें) रहनेके समान है। तुलसीदासजी (अपने मनसे) कहते हैं—अरे मन! यहाँ श्रीराम-लक्ष्मण एवं जानकीजीका स्मरण करो॥ ४३॥

पय नहाइ फल खाहु परिहरिय आस।
सीय राम पद सुमिरहु तुलसीदास॥ ४४॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! पयस्विनी नदीमें स्नान करके फल खाकर रहो, सब प्रकारकी आशाओंको छोड़ दो और (केवल) श्रीसीतारामजीके चरणोंका स्मरण करो॥ ४४॥

स्वारथ परमारथ हित एक उपाय।
सीय राम पद तुलसी प्रेम बढ़ाय॥ ४५॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! स्वार्थ (लौकिक हित) तथा परमार्थ-(आत्मकल्याण) के लिये एक ही उपाय है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम बढ़ाओ॥ ४५॥

काल कराल बिलोकहु होइ सचेत।
राम नाम जपु तुलसी प्रीति समेत॥ ४६॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! सावधान होकर भयंकर काल-(मृत्यु) को (समीप) देखो और प्रेमपूर्वक श्रीराम-नामका जप करो॥ ४६॥

संकट सोच बिमोचन मंगल गेह।
तुलसी राम नाम पर करिय सनेह॥ ४७॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! सब प्रकारके संकट एवं शोकको नष्ट करनेवाले तथा सम्पूर्ण मंगलोंके निकेतन श्रीराम-नामसे प्रेम करना चाहिये॥ ४७॥

कलि नहिं ग्यान बिराग न जोग समाधि।
राम नाम जपु तुलसी नित निरुपाधि॥ ४८॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! कलियुगमें न ज्ञान सम्भव है न वैराग्य, न योग ही सध सकता है, फिर समाधिकी तो कौन कहे। (अतः इस युगमें) नित्य (सर्वदा) विघ्नरहित राम-नामका जप करो॥ ४८॥

राम नाम दुइ आखर हियँ हितु जान।
राम लखन सम तुलसी सिखब न आन॥ ४९॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! राम-नामके दो अक्षरोंको राम-लक्ष्मणके समान हृदयसे (अपना) हितकारी समझो और किसी शिक्षाको मनमें स्थान मत दो॥ ४९॥

माय बाप गुरु स्वामि राम कर नाम।
तुलसी जेहि न सोहाइ ताहि बिधि बाम॥ ५०॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! रामका नाम ही (तुम्हारे लिये) माता, पिता, गुरु और स्वामी है। जिसे यह अच्छा न लगे, उसके

लिये विधाता प्रतिकूल है (जन्म-मरणके चक्रमें भटकना ही उसके भाग्यमें बदा है।) ॥ ५० ॥

राम नाम जपु तुलसी होइ बिसोक।
लोक सकल कल्यान नीक परलोक॥ ५१ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! शोक (चिन्ता) रहित होकर राम-नामका जप करो। इससे इस लोकमें सब प्रकारसे कल्याण और परलोकमें भी भला होगा॥ ५१ ॥

तप तीरथ मख दान नेम उपबास।
सब ते अधिक राम जपु तुलसीदास॥ ५२ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! जो तपस्या, तीर्थयात्रा, यज्ञ, दान, नियम-पालन, उपवास आदि सबसे अधिक (फलदाता) हैं, उस राम-नामका जप करो॥ ५२ ॥

महिमा राम नाम कै जान महेस।
देत परम पद कासीं करि उपदेस॥ ५३ ॥

श्रीराम-नामकी महिमा शंकरजी जानते हैं, जो काशीमें (मरते हुए प्राणीको) उसका उपदेश करके परम पद (मोक्ष) देते हैं॥ ५३॥

जान आदि कबि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत कोल ते भए रिषि राउ॥ ५४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि आदिकवि वाल्मीकिजीने राम-नामका प्रभाव जाना था, जिसका उलटा जप करके वे कोल-(ब्याध) से ऋषिराज हो गये॥ ५४॥

कलसजोनि जियँ जानेउ नाम प्रतापु।
कौतुक सागर सोखेउ करि जियँ जापु॥ ५५॥

महर्षि अगस्त्यने हृदयसे (राम) नामका प्रताप जाना, जिन्होंने मनमें ही उसका जप करके खेल-ही-खेलमें समुद्रको सोख लिया॥ ५५॥

तुलसी सुमिरत राम सुलभ फल चारि।
बेद पुरान पुकारत कहत पुरारि॥ ५६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामका स्मरण करनेसे ही (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—) चारों फल सुलभ हो जाते हैं। (यह बात) वेद-पुराण पुकार-कर कहते हैं और शंकरजी भी कहते हैं॥ ५६॥

राम नाम पर तुलसी नेह निबाहु।
एहि ते अधिक न एहि सम जीवन लाहु॥ ५७॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! राम-नामसे प्रेमका निर्वाह करो। इससे अधिक तो क्या इसके बराबर भी जीवनका कोई (दूसरा) लाभ नहीं है॥ ५७॥

दोस दुरित दुख दारिद दाहक नाम।
सकल सुमंगल दायक तुलसी राम॥ ५८॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! राम-नाम समस्त दोषों, पापों, दुःखों और दरिद्रताको जला डालनेवाला तथा सम्पूर्ण श्रेष्ठ मंगलोंको देनेवाला है॥ ५८॥

केहि गिनती मह गिनती जस बन घास।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास॥ ५९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं किस गिनतीमें था, मेरी तो वह दशा थी जो वनकी घासकी होती है, किंतु राम-नामका जप करनेसे वही मैं तुलसी (के समान पवित्र एवं आदरणीय) हो गया!॥ ५९॥

आगम निगम पुरान कहत करि लीक।
तुलसी राम नाम कर सुमिरन नीक॥ ६०॥

तुलसीदासजी कहते हैं—तन्त्रशास्त्र, वेद तथा पुराण रेखा खींचकर (निश्चयपूर्वक कहते हैं कि) राम-नाम-स्मरण (सबसे) उत्तम है॥ ६०॥

सुमिरहु नाम राम कर सेवहु साधु।
तुलसी उतरि जाहु भव उदधि अगाधु॥ ६१॥

तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मन! राम-नामका स्मरण करो और सत्पुरुषोंकी सेवा करो।

(इस प्रकार) अपार संसार-सागरके पार उतर जाओ॥ ६१ ॥

कामधेनु हरि नाम कामतरु राम।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम॥ ६२॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामका नाम कामधेनु है और उनका रूप कल्पवृक्षके समान है। श्रीराम-नामका स्मरण करनेसे ही चारों फल सुलभ हो जाते (सरलतासे मिल जाते) हैं॥ ६२ ॥

तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय॥ ६३॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि (श्रीरामसे प्रेम करनेकी बात) कहते-सुनते तो सब हैं, किंतु समझता (आचरणमें लाता) कोई ही है। बड़ा सौभाग्य (उदय) होनेपर श्रीरामसे प्रेम होता है॥ ६३ ॥

एकहि एक सिखावत जपत न आप।
तुलसी राम प्रेम कर बाधक पाप॥ ६४॥

(लोग) एक-दूसरेको (नाम-जपकी) शिक्षा तो देते हैं, किंतु स्वयं जप नहीं करते। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामके प्रेममें बाधा देनेवाला उनका पाप ही है॥ ६४॥

मरत कहत सब सब कहँ सुमिरहु राम।
तुलसी अब नहिं जपत समुझि परिनाम॥ ६५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सभी मरणासन्न व्यक्तियोंसे कहते हैं—'रामका स्मरण करो', किंतु सबका परिणाम (निश्चित मृत्यु है, यह) समझकर अभी (जीवनकालमें ही नामका) जप नहीं करते॥ ६५॥

तुलसी राम नाम जपु आलस छाँडु।
राम बिमुख कलि काल को भयो न भाँडु॥ ६६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि आलस्यको छोड़ दो और राम-नामका जप करो। रामसे विमुख होकर इस कलियुगमें कौन भाँड़ (नाना रूप

बनाकर बहुरूपियेके समान घूमनेको विवश) नहीं हुआ ॥ ६६ ॥

तुलसी राम नाम सम मित्र न आन।
जो पहुँचाव राम पुर तनु अवसान ॥ ६७ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि राम-नामके समान दूसरा कोई मित्र नहीं है, जो शरीरका अन्त होनेपर (जीवको) श्रीरामके धाममें पहुँचा देता है ॥ ६७ ॥

राम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनंदन तुलसी देहु ॥ ६८ ॥

(प्रार्थना करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—) हे रघुनाथजी! इस तुलसीदासको तो जन्म-जन्ममें अपना भरोसा, अपने नामका बल और अपने नाममें प्रेम दीजिये ॥ ६८ ॥

जनम जनम जहँ जहँ तनु तुलसिहि देहु।
तहँ तहँ राम निबाहिब नाथ सनेहु ॥ ६९ ॥

आप जन्म-जन्ममें जहाँ-जहाँ (जिस-जिस योनिमें) तुलसीदासको शरीर-धारण करायें, वहाँ-वहाँ हे मेरे स्वामी श्रीराम! मेरे साथ स्नेहका निर्वाह करें (मुझपर स्नेह रखें।) ॥ ६९ ॥

बरवै रामायण समाप्त